लाला रामलाल कपूर ट्रस्ट ग्रन्थमाला सं० ८



प्रचारार्थ—केवल भाषार्थयुक्त

सन्ध्योपासनविधिः

प्रार्थनाग्निहोत्रमन्त्रसहित



महर्षि दयानन्दकृत पञ्चमहायज्ञविधि तथा
संस्कारविधि से उद्धृत

❋ इस संस्करण की विशेषता ❋
ऋषि दयानन्दकृत भाषार्थसहित, शुद्धपाठ, सुन्दर
छपाई, बढ़िया कागज़, लागत से कम मूल्य

रामलाल कपूर ट्रस्ट

अनारकली, लाहौर

❋ ओ३म् ❋

आर्य समाज के नियम

१—सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सब का आदि मूल परमेश्वर है।

२—ईश्वर सच्चिदानन्द-स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है।

३—वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

४—सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।

५—सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिये।

६—संसार का उपकार करना आर्य्यसमाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और समाजिक उन्नति करना।

७—सबसे प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिये।

८—अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये।

९—प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिये किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।

१०—सब मनुष्यों को सामाजिक सर्व-हितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये, और प्रत्येक-हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।



लाला रामलाल कपूर ट्रस्ट ग्रन्थमाला सं०

प्रचारार्थ

सन्ध्योपासनाविधिः

प्रार्थनाग्निहोत्रमन्त्रसहित

महर्षि दयानन्दकृत पञ्चमहायज्ञविधि तथा
संस्कारविधि से उद्धृत

प्रकाशक—
रूपलाल कपूर
मन्त्री ला० रामलाल कपूर ट्रस्ट
अनारकली, लाहौर ।
वैशाख १९९९
अब तक डेढ़ लाख छपी ।

तृतीय बार (हिं० सं०) २०००० — दयानन्दाब्द ११६ — मूल्य)॥

मुद्रक—श्रीमती रूपरानी ट्रेसर के अधिकार से सन्त प्रिंटिंग प्रेस
मोरी गेट, लाहौर ने लाला रूपलालजी के लिए छापी ।

ट्रस्ट का उद्देश

प्राचीन वैदिक साहित्य का अन्वेषण, रक्षा तथा प्रचार

ट्रस्ट का कार्य

स्वर्गीय श्रीपूज्य ला० रामलालजी कपूर की स्मृति में स्थापित इस ट्रस्ट ने १४ वर्षों में आर्यजनता की जो सेवा की है उसका फल निम्नलिखित ग्रन्थ हैं, जो अब तक छप चुके हैं—

(१) सन्ध्योपासनविधि (ऋषि दयानन्दकृत) १००००० १) सैंकड़ा
(२) सन्ध्योपासनविधि (हवनसहित),, भाषा ५०००० १) सैंकड़ा
(३) पञ्चमहायज्ञविधि ,, ३५००० २॥) सैंकड़ा
(४) आर्याभिविनय ,, १८००० ≡) प्रति
(५) Vedic Anthology (वेदों के कुछ सूक्तों का अंग्रेज़ी में अनुवाद) श्री० स्वा० भूमानन्द जी एम० ए० कृत १॥)
(६) मङ्गलप्रभात—ले० श्री० पू० महात्मा गान्धी –)
(७) वाक्यपदीय भर्तृहरिकृत स्वोपज्ञव्याख्यासहित (व्याकरण का प्राचीन ग्रन्थ) सम्पादक श्री० पं० चारुदेव जी एम० ए० । प्रथम काण्ड ३) द्वितीय काण्ड भा० १ १॥)
(८) यजुर्वेदभाष्य (ऋषि दयानन्दकृत) श्री० पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासुकृत विवरणसहित यन्त्रस्थ

हमारी सन्ध्या स्कूलों तथा पाठशालाओं के प्रारम्भिक बालकों के काम में अधिकतर आती है। उनके लिये संस्कृतभाष्य प्रायः अनुपयुक्त सा ही रहता है। इसलिये अब हमने सन्ध्या का केवल भाषार्थयुक्त संस्करण पृथक् मुद्रित किया है। बालकों के लिये उपयोगी बनाने के विचार से हमने इसे मोटे टाइप में छपवाया है। और कई सज्जनों के अनुरोध से साथ में प्रार्थनामन्त्र, हवनमन्त्र तथा दो एक भजन भी दे दिए हैं। हमारा इस संस्करण पर लगभग ५) सैंकड़ा व्यय हुआ है।

रूपलाल कपूर

सन्ध्या का सार

सन्ध्या = आध्यात्मिक भोजन (आत्मा की खुराक)

भूखे को भोजन, पिपासु को पानी, रोगी को औषध का आनन्द पूछना चाहिए। "स्वयं तदन्तःकरणेन गृह्यते" यह स्व २ अन्तःकरण का ही विषय है।

प्रतिदिन, प्रतिघण्टा, प्रतिक्षण मैले होते रहने वाले वस्त्र के लिये धोबी या साबुन की परमावश्यकता है। उसी प्रकार आत्मा रूपी वस्त्र किस साबुन या धोबी से धुलेगा?

सन्ध्या=परमात्मदेव के चिन्तन से। सो कैसे?

सर्वव्यापी—सुख की वर्षा करने वाले—प्रभु का आश्रय।

शत्रुओं पर विजय, चंचल इन्द्रियों को सुमार्ग में लगाकर उन्हीं को मित्र बना लेना॥ सूर्य चन्द्रादि विचित्र विविध सृष्टि के महान् रचयिता व्यवस्थापक प्रभु से डर पाप से बचना॥ उच्छृङ्खल (दुलतियां चलाने वाले) दुर्निवार (बड़े यत्न से वश में होने वाले, दूर दूर जाने वाले) मन-रूपी घोड़े को पूर्व-पश्चिम-उत्तर-दक्षिण नीचे और ऊपर उस महान् प्रभु का अन्त लेने में खुली दौड़ दौड़ा कर हंपा और थका देना॥

अब यह ठहरे कहाँ? माता की गोद में!! अन्धकार से रहित प्रकाश से परिपूर्ण—जातवेदाः—दिव्यस्वरूप—बल के देने वाले विचित्र स्वरूप—चराचर के आत्मा के समीप!! क्या ऐसे महान् पिता के आश्रय लेने से किसी का भी भय रह सकता है? कदापि नहीं, तो क्या वह दूर है? नहीं। तो फिर? हम दूर हैं। अपनी दूरी को दूर करें। उपासक बनें॥

संसार भर के देश, जाति और मनुष्यों में पुण्य-पाप, अच्छा-बुरा, नेकी-बदी, अवश्य ही मानी जाती है और माननी पड़ेगी॥

अतः जगत् के प्राण, दुःख दूर करने वाले, शुद्धस्वरूप-परमात्म-देव के चिन्तन से हमारी पाप-अधर्म-अपवित्र-स्वार्थ बुद्धि दूर हो। पुण्य-धर्म-पवित्र विश्वहित-बुद्धि बनी रहे॥

कल्याणकारी उस प्रभु को हम अपना सर्वस्व अर्पण कर दें। प्रातः सायं इन्हीं बातों का चिन्तन करना सन्ध्या है॥

बस इतना ही ? हाँ इतना (आध्यात्मिक) भोजन तो पच भी कठिनाई से सकेगा॥

अहा !!! कैसा सुन्दर साबुन—आत्मा का बढ़िया भोजन यह सन्ध्या है। तो यह भूख मिटाने वाला भोजन अच्छा क्यों नहीं लगता ? सच्ची भूख नहीं। जब भी सच्ची भूख लग जायगी, तभी इसका आनन्द अनुभव होगा। तभी ऋषि की इस वैदिक सन्ध्या के एक २ शब्द का रहस्य स्वयं ही समझ में आता जायेगा। एक ही पृष्ठ पर मनन करने में घण्टों बीत जायेंगे॥

तो ऐसी भूख लगती क्यों नहीं ? अज्ञान से अनित्य को नित्य, शरीरादि अपवित्र को पवित्र, दुःखदायी कार्यों को सुख देने वाले, अनात्मा को आत्मा समझ रहे हैं॥

यह अविद्या अन्धकार कैसे दूर हो—तत्त्वज्ञान से। तत्त्वज्ञान बिना शास्त्र के स्वाध्याय से कहाँ !!! हाँ ठीक ! इसी लिये स्वाध्याय भी ब्रह्मयज्ञ है॥

तो क्या इससे रोटी भी मिलेगी ? हां हां ! सो कैसे ? शान्त चित्त ही शान्ति से बैठकर सोचेगा तभी रोटी मिलने का उपाय भी सूझेगा नहीं तो हाय २ मचाने से भी तो रोटी कहीं से गिर नहीं पड़ेगी॥

ठीक, इसी लिये ऋषि ने लिखा—

"नित्य कर्मों के फल शरीर सुख से व्यवहार और परमार्थ कार्यों की सिद्धि॥"

प्रभु कृपा करें ! हमें सच्ची आध्यात्मिक भूख लगे। और हम सन्ध्या रूपी आत्मिक भोजन का आनन्द प्राप्त कर सकें।

ब्रह्मदत्त जिज्ञासु (सम्पादक)

———



अथ सन्ध्योपासनब्रह्मयज्ञविधिः



यह पुस्तक नित्यकर्मविधि का है, इसमें ब्रह्मयज्ञ का विधान है। इसके मन्त्र, मन्त्रों के अर्थ और जो जो करने का विधान लिखा है सो सो यथावत् करना चाहिए। एकान्त देश में अपने आत्मा, मन और शरीर को शुद्ध और शान्त करके उस उस कर्म में चित्त लगा के तत्पर होना चाहिए। इस नित्यकर्म के फल ये हैं कि ज्ञानप्राप्ति से आत्मा की उन्नति और आरोग्यता होने से शरीर के सुख से व्यवहार और परमार्थकार्यों की सिद्धि होना, उस से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये सिद्ध होते हैं। इन को प्राप्त होकर मनुष्यों को सुखी होना उचित है॥

अथाग्निहोत्रसन्ध्योपासनयोः प्रमाणानि

सायंसायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातःप्रातः सौमन-

सस्य दाता। वसोर्वसोर्वसुदान एधि वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम ॥१॥

प्रातःप्रातर्गृहपतिर्नो अग्निः सायंसायं सौमनसस्य दाता। वसोर्वसोर्वसुदान एधीन्धानास्त्वा शतंहिमा ऋधेम ॥२॥ अथर्व कां० १९।सू०५५।मं० ३,४।

तस्माद् ब्राह्मणोऽहोरात्रस्य संयोगे सन्ध्यामुपास्ते । सज्योतिष्या ज्योतिषो दर्शनात्सोऽस्याः कालः सा सन्ध्या तत् सन्ध्यायाः सन्ध्यात्वम् ॥ षड्विंश ब्रा० प्रपा० ४ । खं० ५ ॥ ३ ॥

उद्यन्तमस्तं यन्तमादित्यमभिध्यायन् कुर्वन् ब्राह्मणो विद्वान् सकलं भद्रमश्नुते ॥ तैत्तिरीय आ० प्रपा० २ । अनु० २ ॥ ४ ॥

[पूर्वां सन्ध्यां जपंस्तिष्ठेत् सावित्रीमार्कदर्शनात् ।
पश्चिमां तु समासीनः सम्यगृक्षविभावनात् ॥ मनु० २।१०१] ॥५॥

न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम् ।
स शूद्रवद् बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः ॥
मनु० अ० २ । श्लो० १०३ ॥६॥

॥ भाषार्थ ॥

(सायं सायम्) यह हमारा गृहपति अर्थात् घर और आत्मा का रक्षक भौतिक अग्नि और परमेश्वर प्रतिदिन प्रातःकाल और सायंकाल श्रेष्ठ उपासना को प्राप्त होके (सौमनसस्य दाता) जैसे आरोग्य और आनन्द का देने वाला है, उसी प्रकार उत्तम से उत्तम वस्तु का देने

वाला है, इसी से परमेश्वर (वसुदानः) वसु अर्थात् धन का देने वाला प्रसिद्ध है । हे परमेश्वर ! इस प्रकार आप मेरे राज्य आदि व्यवहार और चित्त में प्रकाशित रहिए। तथा इस मन्त्र में अग्निहोत्र आदि करने के लिए भौतिक अग्नि भी ग्रहण करने योग्य है। (वयं त्वे०) हे परमेश्वर ! पूर्वोक्त प्रकार से हम आप को प्रकाशित करते हुए अपने शरीर को (पुषेम) पुष्ट करें। इसी प्रकार भौतिक अग्नि को प्रज्वलित करते हुए सब संसार की पुष्टि करके पुष्ट हों ॥१॥

(प्रातःप्रातर्गृहपतिर्नो०) इस मन्त्र का अर्थ पूर्व मन्त्र के तुल्य जानो। परन्तु यह विशेष है कि अग्निहोत्र और ईश्वर की उपासना करते हुए हम लोग (शतंहिमाः) सौ हेमन्त ऋतु बीत जायँ जिन वर्षों में अर्थात् सौ वर्ष पर्यन्त (ऋधेम) धनादि पदार्थों से वृद्धि को प्राप्त होते रहें और पूर्वोक्त प्रकार से अग्निहोत्रादि कर्म करके हमारी हानि कभी न हो, ऐसी इच्छा करते हैं ॥२॥

(तस्माद् ब्राह्मणो०) ब्रह्म का उपासक मनुष्य रात्रि और दिवस के सन्धि समय में नित्य उपासना करे, जो प्रकाश और अप्रकाश का संयोग है + वही सन्ध्या का

+ (i) उप॑ त्वाग्ने दि॒वेदि॑वे दोषा॑वस्तर्धि॒या व॒यम् ।
नमो॒ भर॑न्त॒ एम॑सि ॥ ऋ० १।१।७॥ य० ३।२२॥

हे अग्ने ईश्वर ! (दिवेदिवे) प्रतिदिन (दोषावस्तः) सायं प्रातः [वस्त

काल जानना और उस समय में जो सन्ध्योपासन की ध्यान क्रिया करनी होती है वही सन्ध्या है, और जो एक ईश्वर को छोड़ के दूसरे की उपासना न करनी तथा सन्ध्योपासना कभी न छोड़ देना इसी को सन्ध्योपासन कहते हैं ॥ ३॥

(उद्यन्तमस्तं यन्त०) जब सूर्य्य के उदय और अस्त का समय आवे उस में नित्य प्रकाश स्वरूप आदित्य परमेश्वर की उपासना करता हुआ ब्रह्मोपासक ही मनुष्य सम्पूर्ण सुख को प्राप्त होता है इस से सब मनुष्यों को उचित है कि दो समय में परमेश्वर की नित्य उपासना किया करें ॥ ४॥

इत्यहर्वाचीति स्वा० दयानन्दः, सायणोऽपि—सम्पादकः] (धिया) भक्ति से (नमः) नमस्कार (भरन्तः) करते हुए (वयम्) हम (उप त्वा) आपके समीप, आपकी शरण में (आ इमसि) आते हैं ॥

(ii) यत् सायं च प्रातश्च सन्ध्यामुपास्ते......षडविं० ब्रा० ४।५॥

(iii) ब्रह्मवादिनो वदन्ति कस्माद् ब्राह्मणः सायमासीनः सन्ध्या-मुपास्ते कस्मात् प्रातस्तिष्ठन् ॥ षडविं० ब्रा० ४।५॥

ऊपर के तथा इन प्रमाणों से स्पष्ट सिद्ध है कि सन्ध्या दो काल ही होती है। यदि कोई सज्जनः अधिक करना चाहें तो उनके लिये तो "शय्यासनस्थोऽथ पथि व्रजन् वा" सोता-चलता-उठता-बैठता प्रभु का चिन्तन करे, इससे अच्छा क्या है ॥ (सम्पा०)

इसमें मनुस्मृति की भी साक्षी है कि दो घड़ी रात्रि से लेके सूर्योदय पर्यन्त प्रातः सन्ध्या और सूर्यास्त से लेकर तारों के दर्शन पर्यन्त सायंकाल में सविता अर्थात् सब जगत् की उत्पत्ति करने वाले परमेश्वर की उपासना गायत्र्यादि मन्त्रों के अर्थ विचार पूर्वक नित्य करें ॥५॥

(न तिष्ठति तु) जो मनुष्य नित्य प्रातः और सायं सन्ध्योपासन को नहीं करता उसको शूद्र के समान समझ कर द्विज कुल से अलग करके* शूद्रकुल में रख देना चाहिये । वह सेवाकर्म किया करे और उसके विद्या का चिह्न यज्ञोपवीत भी न रहना चाहिए, इससे सब मनुष्यों को उचित है कि सब कामों से इस काम को मुख्य जान कर पूर्वोक्त दो समयों में जगदीश्वर की उपासना नित्य करते रहें ॥६॥

॥ इत्यग्निहोत्रसन्ध्योपासनप्रमाणानि † ॥

---

* सायं प्रातः सदा सन्ध्यां ये विप्रा नो उपासते ।
कामं तान् धार्मिको राजा शूद्रकर्मसु योजयेत् ॥बौ०ध०सू०२।४।२०॥

† यह प्रमाणरूप भूमिकाभाग पञ्चमहायज्ञविध्यन्तर्गत ब्रह्मयज्ञ के अन्त में दिया गया है; सुगमता के विचार से हमने प्रारम्भ में ही दे दिया है—(सं०) ।

(अथ प्रथमो ब्रह्मयज्ञः सन्ध्योपासनम्)

अब सन्ध्योपासना ब्रह्मयज्ञ की विधि लिखी जाती है और उस में के मन्त्रों का अर्थ भी लिखा जाता है। पहिले सन्ध्या शब्द का अर्थ यह है कि (सन्ध्यायन्ति) भली भांति ध्यान करते हैं वा ध्यान किया जाय परमेश्वर का जिस में वह सन्ध्या, सो रात और दिन के संयोग समय दोनों सन्ध्याओं में सब मनुष्यों को परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करनी चाहिये। पहिले बाह्य जलादि से शरीर की शुद्धि और राग द्वेष आदि के त्याग से भीतर की शुद्धि करनी चाहिये। क्योंकि मनु जी ने ५ अ० के १०९ श्लोक (अद्भिर्गात्राणि*) इत्यादि में यह लिखा है कि शरीर जल से, मन सत्य से, जीवात्मा विद्या और तप से और बुद्धि ज्ञान से शुद्ध होती है। परन्तु शरीर शुद्धि की अपेक्षा अन्तःकरण की शुद्धि सब को अवश्य करनी चाहिए, क्योंकि वही सर्वोत्तम और परमेश्वर प्राप्ति का एक साधन है। तब कुशा वा हाथ से मार्जन करे अर्थात् परमेश्वर का ध्यान आदि करने के समय किसी प्रकार का आलस्य न आवे, इसलिये शिर और नेत्र आदि पर जलप्रक्षेप करे, यदि आलस्य न हो तो न करना॥

* अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति॥

फिर कम से कम तीन प्राणायाम करे अर्थात् भीतर के वायु को बल से निकाल कर यथाशक्ति बाहर ही रोक दे फिर शनैः शनैः ग्रहण करके कुछ चिर भीतर ही रोक के बाहर निकाल दे और वहां भी कुछ रोके इस प्रकार कम से कम तीन बार करे। इस से आत्मा और मन की स्थिति सम्पादन करे, इस के अनन्तर गायत्री मन्त्र से शिखा को बांध कर रक्षा करे। इसका प्रयोजन यह है कि केश इधर उधर न गिरें, सो यदि केशादिपतन न हो तो न करे और रक्षा करने का प्रयोजन यह है कि परमेश्वर प्रार्थित होकर सब भले कामों में सदा सब जगह में हमारी रक्षा करें॥

॥ अथाचमनमन्त्रः ॥

ओं शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शंयोरभि स्रवन्तु नः॥ यजु० अ० ३६। मं० १२॥

॥ भाषार्थ ॥

अब आचमन करने का मन्त्र लिखते हैं (ओं शन्नो देवीरित्यादि) इसका अर्थ यह है कि 'आप्लृ व्याप्तौ' इस धातु से अप् शब्द सिद्ध होता है वह सदा स्त्रीलिङ्ग और बहुवचनान्त है। दिवु धातु अर्थात् जिसके क्रीडा आदि अर्थ हैं उससे देवी शब्द सिद्ध होता है (देवीः आपः) सब का प्रकाशक सब को आनन्द देने वाला और सर्वव्यापक ईश्वर (अभिष्टये) मनोवाञ्छित आनन्द के लिये और

(पीतये) पूर्णानन्द की प्राप्ति के लिये (नः) हमको (शम्) कल्याणकारी (भवन्तु) हो, अर्थात् हमारा कल्याण करे। वही परमेश्वर (नः) हम पर (शंयोः) सुख की (अभिस्रवन्तु) सर्वथा वृष्टि करे । इस प्रकार इस मन्त्र से परमेश्वर की प्रार्थना करके तीन आचमन करे। यदि जल न हो तो न करे । आचमन से गले के कफादि की निवृत्ति होना प्रयोजन है ॥

यहां अप् शब्द से ईश्वर के ग्रहण करने में प्रमाण (यत्र लोकांश्च+) जिसमें सब लोक लोकान्तर (कोश) अर्थात् सब जगत् का कारणरूप खज़ाना जिस में असत् अदृश्य-रूप आकाशादि और सत् स्थूल(कार्य)प्रकृत्यादि सब पदार्थ स्थिर हैं उसी का नाम अप् है और वह नाम ब्रह्म का है तथा उसी को स्कम्भ कहते हैं वह कौनसा देव और कहां है इसका यह उत्तर है कि (अन्तः) सब के भीतर व्यापक हो के परिपूर्ण हो रहा है उसी को तुम उपास्य, पूज्य और इष्टदेव जानो इस वेदमन्त्र के प्रमाण से अप् नाम ब्रह्म का है ॥

॥ अथेन्द्रियस्पर्शः ॥

ओं वाक् वाक्। ओं प्राणः प्राणः। ओं चक्षुः चक्षुः।

+यत्र लोकांश्च कोशांश्चापो ब्रह्म जना विदुः । असच्च यत्र सच्चान्त स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ अथ० १०।७।१०॥

ओं श्रोत्रं श्रोत्रम्। ओं नाभिः। ओं हृदयम्।
ओं कण्ठः। ओं शिरः। ओं बाहुभ्यां यशोबलम्।
ओं करतलकरपृष्ठे॥

॥ भाषार्थ ॥

अथेन्द्रियस्पर्शः—(ओं वाक् वागित्यादि) इस प्रकार से ईश्वर की प्रार्थनापूर्वक इन्द्रियों का स्पर्श करे। इसका अभिप्राय यह है कि ईश्वर की प्रार्थना से सब इन्द्रियां बलवान् रहें॥

अब ईश्वर की प्रार्थनापूर्वक मार्जन के मन्त्र लिखे जाते हैं—

॥ अथेश्वरप्रार्थनापूर्वकमार्जनमन्त्राः ॥

ओं भूः पुनातु शिरसि। ओं भुवः पुनातु नेत्रयोः।
ओं स्वः पुनातु कण्ठे। ओं महः पुनातु हृदये।
ओं जनः पुनातु नाभ्याम्। ओं तपः पुनातु पादयोः। ओं सत्यं पुनातु पुनश्शिरसि। ओं खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र॥

॥ भाषार्थ ॥

(ओं भूः पुनातु शिरसीत्यादि) ओंकार, भूः, भुवः, और स्वः, इनके अर्थ गायत्री मन्त्र के अर्थ में देख लेना। (महः) सब से बड़ा और सब का पूज्य होने से परमेश्वर को 'महः' कहते हैं (जनः) सब जगत् के उत्पादक होने

से परमेश्वर का 'जन' नाम है (तपः) दुष्टों को सन्तापकारी और ज्ञानस्वरूप होने से ईश्वर को 'तपः' कहते हैं, क्योंकि (यस्येत्यादि*) उपनिषद् का वाक्य इस में प्रमाण है, (सत्यम्) अविनाशी होने से परमेश्वर का 'सत्य' नाम है। और व्यापक होने से 'ब्रह्म' नाम परमेश्वर का है। अर्थात् पूर्व मन्त्रोक्त सब नाम परमेश्वर ही के हैं। इस प्रकार ईश्वर के नामों के अर्थों का स्मरण करते हुए मार्ज्जन करें ॥

॥ अथ प्राणायाममन्त्राः ॥

ओं भूः। ओं भुवः। ओं स्वः। ओं महः। ओं जनः। ओं तपः। ओं सत्यम्॥ तैत्ति० आ० प्रपा० १०। अनु० २७

इति प्राणायाममन्त्राः ॥

॥ भाषार्थ ॥

अब प्राणायाम के मन्त्र लिखते हैं (ओं भूरित्यादि) इनके उच्चारण और अर्थ विचार पूर्वक पूर्वोक्त प्रकार प्राणायामों को करे ॥

इस प्रकार प्राणायाम करके अर्थात् भीतर के वायु को बल से नासिका के द्वारा बाहर फैंक के यथाशक्ति बाहर ही रोक के पुनः धीरे धीरे भीतर लेके पुनः बल से बाहर फैंक के रोकने से मन और आत्मा को स्थिर करके आत्मा के बीच में जो अन्तर्यामीरूप से ज्ञान और

* यस्य ज्ञानमयं तपः। मुण्डको० १।१।६॥

आनन्दस्वरूप व्यापक परमेश्वर है उसमें अपने आप को मग्न करके अत्यन्त आनन्दित होना चाहिए। जैसे ग़ोताख़ोर जल में डुबकी मार के शुद्ध होके बाहर आता है वैसे ही सब जीव लोग अपने आत्माओं को शुद्ध ज्ञान आनन्दस्वरूप व्यापक परमेश्वर में मग्न करके नित्य शुद्ध करें॥

॥ अथाघमर्षणमन्त्राः ॥

ओ३म् ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत।
ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः ॥१॥
समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत।
अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी ॥२॥
सूर्य्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।
दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथो स्वः ॥३॥

ऋ० मण्ड० १०। सू० १९०। मं० १, २, ३॥

॥ भाषार्थ ॥

अब अघमर्षण अर्थात् हे ईश्वर ! तू जगदुत्पादक है, इत्यादि स्तुति करके पाप से दूर रहने के उपदेश का मन्त्र लिखते हैं। (ओं ऋतं च सत्यमित्यादि) इसका अर्थ यह है कि (धाता) सब जगत् को धारण और पोषण करने

वाला और (वशी) सब को वश में करने वाला परमेश्वर (यथापूर्वम्) जैसा कि उस के सर्वज्ञ विज्ञान में जगत् के रचने का ज्ञान था और जिस प्रकार पूर्वकल्प की सृष्टि में जगत् की रचना थी और जैसे जीवों के पुण्य पाप थे उन के अनुसार ईश्वर ने मनुष्यादि प्राणियों के देह बनाये हैं, (सूर्य्याचन्द्रमसौ) जैसे पूर्वकल्प में सूर्य चन्द्र लोक रचे थे वैसे ही इस कल्प में भी रचे हैं (दिवम्) जैसा पूर्व सृष्टि में सूर्य्यादि लोकों का प्रकाश रचा था वैसा ही इस कल्प में भी रचा है तथा (पृथिवीम्) जैसी प्रत्यक्ष दीखती है (अन्तरिक्षम्) जैसा पृथिवी और सूर्य्यलोक के बीच में पोलापन है (स्वः) जितने आकाश के बीच में लोक हैं उन को (अकल्पयत्) ईश्वर ने रचा है। जैसे अनादिकाल से लोक लोकान्तरों को जगदीश्वर बनाया करता है वैसे ही अब भी बनाये हैं और आगे भी बनावेगा क्योंकि ईश्वर का ज्ञान विपरीत कभी नहीं होता किन्तु पूर्ण और अनन्त होने से सर्वदा एकरस ही रहता है। उस में वृद्धि, क्षय, और उलटापन कभी नहीं होता इसी कारण से (यथापूर्वमकल्पयत्) इस पद का ग्रहण किया है। (विश्वस्य मिषतः) उसी ईश्वर ने सहज स्वभाव से जगत् के रात्रि, दिवस, घटिका, पल और क्षण आदि जैसे पूर्व थे वैसे ही (विदधत्) रचे हैं । इसमें कोई ऐसी शंका करे कि ईश्वर

ने किस वस्तु से जगत् को रचा है उस का उत्तर यह है कि (अभीद्धात्तपसः) ईश्वर ने अपने अनन्त सामर्थ्य से सब जगत् को रचा है। जो कि ईश्वर के प्रकाश से जगत् का कारण प्रकाशित और सब जगत् के बनाने की सामग्री ईश्वर के आधीन है। (ऋतम्) उसी अनन्त ज्ञानमय सामर्थ्य से सब विद्या का ख़ज़ाना वेदशास्त्र को प्रकाशित किया जैसा कि पूर्वसृष्टि में प्रकाशित था और आगे के कल्पों में भी इसी प्रकार से वेदों का प्रकाश करेगा, (सत्यम्) जो त्रिगुणात्मक अर्थात् सत्त्व, रजो और तमोगुण से युक्त है जिसके नाम अव्यक्त, अव्याकृत, सत्, प्रधान, प्रकृति हैं जो स्थूल और सूक्ष्म जगत् का कारण है सो भी (अध्यजायत) अर्थात् कार्य रूप होके पूर्व कल्प के समान उत्पन्न हुआ है। (ततो रात्र्यजायत) उसी ईश्वर के सामर्थ्य से जो प्रलय के पीछे हज़ार चतुर्युगी के प्रमाण से रात्रि कहाती है, सो भी पूर्व प्रलय के तुल्य ही होती है। इसमें ऋग्वेद का प्रमाण है * कि जब जब विद्यमान सृष्टि होती है उसके पूर्व सब आकाश अन्धकाररूप रहता है और उसी अन्धकार में सब जगत् के पदार्थ और सब जीव ढके हुए रहते हैं, उसी का नाम महारात्री है। (ततः समुद्रोऽर्णवः) तदन्तर उसी सामर्थ्य से पृथिवी और मेघमण्डल में जो महासमुद्र है, सो भी पूर्वसृष्टि के सदृश

* तम आसीत्तमसा गूळ्हमग्रे। ऋ० १०।१२९।३॥

ही उत्पन्न हुआ है। (समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत) उसी समुद्र की उत्पत्ति के पश्चात् संवत्सर अर्थात् क्षण, मुहूर्त्त, प्रहर आदि काल भी पूर्वसृष्टि के समान उत्पन्न हुआ वेद से लेके पृथिवी पर्यन्त जो यह जगत् है सो सब ईश्वर के नित्य सामर्थ्य से ही प्रकाशित हुआ है, और ईश्वर सब को उत्पन्न करके सब में व्यापक हो के अन्तर्यामी रूप से सब के पाप पुण्यों को देखता हुआ पक्षपात छोड़ के सत्य न्याय से सब को यथावत् फल दे रहा है, ऐसा निश्चित जान के ईश्वर से भय करके, सब मनुष्यों को उचित है कि मन कर्म और वचन से पाप कर्मों को कभी न करें, इसी का नाम अघमर्षण है, अर्थात् ईश्वर सब के अन्तःकरण के कर्मों को देख रहा है। इससे पापकर्मों का आचरण मनुष्य लोग सर्वथा छोड़ देवें ॥

(शन्नो देवीरिति) इस मन्त्र से [पुनः] तीन आचमन करे। तदनन्तर गायत्र्यादि मन्त्रों के अर्थ विचारपूर्वक परमेश्वर की स्तुति, अर्थात् परमेश्वर के गुण और उपकार का ध्यान कर, पश्चाताप प्रार्थना करे अर्थात् सब उत्तम कामों में ईश्वर का सहाय चाहें। और सदा पश्चात्ताप करें कि मनुष्य शरीर धारण करके हम लोगों से जगत् का उपकार कुछ भी नहीं बनता जैसा कि ईश्वर ने सब पदार्थों

की उत्पत्ति करके सब जगत् का उपकार किया है वैसे हम लोग भी सब का उपकार करें, इस काम में परमेश्वर हम को सहाय करे कि जिससे हम लोग सब को सदा सुख देते रहें। तदनन्तर ईश्वर की उपासना करे, सो दो प्रकार की। एक सगुण और दूसरी निर्गुण जैसे ईश्वर सर्वशक्तिमान्, दयालु, न्यायकारी, चेतन, व्यापक अन्तर्यामी, सब का उत्पादक, धारण करने हारा, मङ्गलमय, शुद्ध, सनातन, ज्ञान और आनन्दस्वरूप है धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पदार्थों का देने वाला, सब का पिता, माता, बन्धु, मित्र, राजा और न्यायाधीश है, इत्यादि ईश्वर के गुणविचारपूर्वक उपासना करने का नाम सगुणोपासना है। तथा निर्गुणोपासना इस प्रकार से करनी चाहिए, कि ईश्वर अनादि, अनन्त है, जिसका आदि और अन्त नहीं, अजन्मा, अमृत्यु, जिसका जन्म और मरण नहीं, निराकार, निर्विकार, जिसका आकार और जिस में कोई विकार नहीं, जिस में रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द, अन्याय, अधर्म, रोग, दोष, अज्ञान और मलीनता नहीं है; जिसका परिणाम, छेदन, बन्धन, इन्द्रियों से दर्शन, ग्रहण और कम्पन नहीं होता; जो ह्रस्व, दीर्घ और शोकातुर कभी नहीं होता। जिसको भूख, प्यास, शीतोष्ण, हर्ष और शोक कभी नहीं होते। जो उलटा

काम कभी नहीं करता इत्यादि जो जगत् के गुणों ईश्वर को अलग जान के ध्यान करना वह निर्गुणोपासना कहाती है ॥

॥ अथ मनसा परिक्रमामन्त्राः ॥

प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षितादित्य इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥१॥

॥ भावार्थ ॥

(प्राची दिगग्निरधिपतिः) जो प्राची दिक् अर्थात् जिस ओर अपना मुख हो (तथा जिधर सूर्य उदय होता है) उस ओर अग्नि जो ज्ञानस्वरूप, अधिपति जो सब जगत् का स्वामी (असितः) बन्धनरहित (रक्षिता) सब प्रकार से रक्षा करने वाला (आदित्या इषवः) जिस के बाण आदित्य की किरणें हैं, उन सब गुणों के अधिपति ईश्वर के गुणों को हम लोग वारंवार नमस्कार करते हैं। (रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु) जो ईश्वर के गुण और ईश्वर के रचे पदार्थ जगत् की रक्षा करने वाले हैं और पापियों को बाणों के समान पीड़ा देने वाले हैं, इनको हमारा नमस्कार हो। इसलिये कि जो प्राणी

अज्ञान से हमारा द्वेष करता और अज्ञान से जिस धार्मिक पुरुष का, तथा पापी पुरुष का हम लोग द्वेष करते हैं उन सब की बुराई को उन बाण रूप किरण मुखरूप के बीच दग्ध कर देते हैं, कि जिससे किसी से हम लोग वैर न करें। और कोई भी प्राणी हम से वैर न करे, किन्तु हम लोग परस्पर मित्रभाव से बर्तें ॥१॥

दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥२॥

(दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिः) जो हमारे दाहिनी ओर दक्षिण दिशा है उसका अधिपति इन्द्र अर्थात् जो पूर्ण ऐश्वर्य वाला है। (तिरश्चिराजी रक्षिता) जो पदार्थ कीट पतङ्ग वृश्चिक आदि तिर्यक् कहाते हैं उनकी राजी जो पङ्क्ति है उनसे रक्षा करने वाला एक परमेश्वर है। (पितर इषवः) जिसकी सृष्टि में ज्ञानी लोग बाण के समान हैं। (तेभ्यो नमो०) आगे का अर्थ पूर्व के समान जान लेना ॥२॥

प्रतीची दिग्वरुणोऽधिपतिः पृदाकू रक्षिताऽन्नमिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥३॥

(प्रतीची दिग् वरुणोऽधिपतिः) जो पश्चिम दिशा अर्थात् अपने पृष्ठ भाग में है, उस वरुण जो सब से उत्तम सब का राजा परमेश्वर है, (पृदाकू रक्षिताऽन्नमिषवः) जो बड़े बड़े अजगर सर्पादि विषधारी प्राणियों से रक्षा करने वाला है, जिसके अन्न अर्थात् पृथिव्यादि पदार्थ बाणों के समान हैं, श्रेष्ठों की रक्षा और दुष्टों की ताड़ना के निमित्त हैं। (तेभ्यो नमो०) इसका अर्थ पूर्व मन्त्र के समान जान लेना ॥३॥

उदीची दिक् सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षिता शनिरिषवः तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥४॥

(उदीची दिक् सोमोऽधिपतिः) जो अपनी बाईं

और उत्तर दिशा है उसमें सोम नाम से अर्थात् शान्त्यादि गुणों से आनन्द करने वाले जगदीश्वर का ध्यान करना चाहिए। (स्वजो रक्षिताऽशनिरिषवः) जो अच्छी प्रकार अजन्मा और रक्षा करने वाला है जिसके बाण विद्युत हैं। (तेभ्यो नमो०) आगे पूर्ववत् जान लेना ॥४॥

ध्रुवा दिग्विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥५॥

(ध्रुवा दिग्विष्णुरधिपतिः) ध्रुवा दिशा अर्थात् जो अपने नीचे की ओर है उसमें विष्णु अर्थात् व्यापक नाम से परमात्मा का ध्यान करना (कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः) जिसके हरित रंगवाले वृक्षादि ग्रीवा के समान हैं जिसके बाण के समान सब वृक्ष हैं उन से अधोदिशा में हमारी रक्षा करे। (तेभ्यो नमो०) आगे पूर्ववत् जान लेना ॥५॥

ऊर्ध्वा दिग् बृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रो रक्षिता वर्षमिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षि-

तृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु । यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥६॥

अथर्व० का० ३ । सूक्त २७ मं १ । २ । ३ । ४ । ५ । ६ ॥

(ऊर्ध्वा दिग्बृहस्पतिरधिपतिः) जो अपने ऊपर दिशा है उस में बृहस्पति जो कि वाणी का स्वामी परमेश्वर है उसको अपना रक्षक जानें, जिस के बाण के समान वर्षा के बिन्दु हैं उनसे हमारी रक्षा करे । (तेभ्यो०) आगे पूर्ववत् जान लेना ॥

॥ इति मनसापरिक्रमामन्त्राः ॥

॥ अथोपस्थानमन्त्राः ॥

ओं उद्वयन्तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम् । देवं देवत्रा सूर्य्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥१॥

य० अ० ३५ । १४ ॥

॥ भाषार्थ ॥

अब उपस्थान के मन्त्रों का अर्थ करते हैं जिन से परमेश्वर की स्तुति और प्रार्थना की जाती है । हे परमेश्वर ! (तमसस्परि स्वः) सब अन्धकार से अलग प्रकाशस्वरूप (उत्तरम्) प्रलय के पीछे सदा वर्त्तमान (देवं देवत्रा) देवों में भी देव अर्थात् प्रकाश करनेवालों में प्रकाशक (सूर्य्यम्) चराचर के आत्मा (ज्योतिरुत्तमम्) जो ज्ञानस्वरूप और सब

से उत्तम आप को जान के (वयमुदगन्म) हम लोग सत्य से प्राप्त हुए हैं। हमारी रक्षा करनी आपके हाथ है क्योंकि हम लोग आपकी शरण हैं ॥१॥

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः।
दृशे विश्वाय सूर्य्यम् ॥२॥ यजु० अ० ३३ मं० ३१ ॥

॥ भाषार्थ ॥

(उदुत्यं जातवेदसं) जिससे ऋग्वेदादि चार वेद प्रसिद्ध हुए हैं और जो प्रकृत्यादि सब भूतों में व्याप्त हो रहा है। जो सब जगत् का उत्पादक है सो परमेश्वर जातवेदा नाम से प्रसिद्ध है (देवम्) जो सब देवों का देव और (सूर्यम्) सब जीवादि जगत् का प्रकाशक है (त्यम्) उस परमात्मा की (दृशे विश्वाय) विश्वविद्या की प्राप्ति के के लिये हम लोग उपासना करते हैं। (उद्वहन्ति केतवः) जिसको केतवः अर्थात् वेद की श्रुति और जगत् के पृथक् पृथक् रचनादि नियामक गुण उसी परमेश्वर को जनाते और प्राप्त कराते हैं उस विश्व के आत्मा अन्तर्यामी परमेश्वर ही की हम उपासना किया करें, अन्य किसी की नहीं ॥ २ ॥

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुण-

स्याग्नेः । आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षꣳसूर्य्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा ॥३॥ य०अ०७सं०४२

॥ भाषार्थ ॥

(चित्रं देवानाम्०) (सूर्य्य आत्मा) प्राणी और जड़ जगत् का जो आत्मा है उसको सूर्य कहते हैं (आप्रा द्या०) जो सूर्य्य और अन्य सब लोकों को बना के धारण और रक्षण करने वाला है (चक्षुर्मित्रस्य०) जो मित्र अर्थात् राग द्वेष रहित मनुष्य तथा सूर्यलोक और प्राण का चक्षु प्रकाश करने वाला है (वरुणस्याग्नेः) सब उत्तम कामों में जो वर्तमान मनुष्य, प्राण, अपान और अग्नि का प्रकाश करने वाला है। (चित्रं देवानाम्) जो अद्भुत-स्वरूप विद्वानों के हृदय में सदा प्रकाशित रहता है (अनीकम्) जो सकल मनुष्यों के सब दुःख नाश करने के लिये परम उत्तम बल है वह परमेश्वर (उदगात्) हमारे हृदयों में यथावत् प्रकाशित रहे ॥३॥

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳशृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः

शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥४॥ य० अ० ३६ मं० २४॥

॥ भाषार्थ ॥

(तच्चक्षुर्देवहितम्०) जो ब्रह्म सबका द्रष्टा धार्मिक विद्वानों का परम हितकारक तथा (पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्) सृष्टि के पूर्व, पश्चात् और मध्य में सत्यस्वरूप से वर्त्तमान रहता और सब जगत् का करने वाला है, (पश्येम शरदः शतम्) उसी ब्रह्म को हम लोग सौ वर्ष पर्यन्त देखें, (जीवेम शरदः शतम्) जीवें, (शृणुयाम शरदः शतम्) सुनें, (प्रब्रवाम श०) उसी ब्रह्म का उपदेश करें, (अदीनाः स्याम०) और उसकी कृपा से किसी के आधीन न रहें, (भूयश्च शरदः शतात्) उसी परमेश्वर की आज्ञा पालन और कृपा से सौ वर्षों से उपरान्त भी हम लोग देखें, जीवें, सुनें, सुनावें, और स्वतन्त्र रहें, अर्थात् आरोग्य शरीर दृढ़ इन्द्रिय, शुद्ध मन और आनन्द सहित हमारा आत्मा सदा रहें । यही एक परमेश्वर सब मनुष्यों का उपास्यदेव है जो मनुष्य इसको छोड़ के दूसरे की उपासना करता है वह पशु के समान होके सब दिन दुःख भोगता रहता है इसलिए प्रेम में अत्यन्त मग्न होके आत्मा और मन को परमेश्वर में जोड़ के इन मन्त्रों से स्तुति और प्रार्थना सदा करते रहें ॥४॥

॥ अथ गुरुमन्त्रः ॥

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यम्भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

य० अ० ३६। मं० ३॥ ऋ० मण्ड० ३ सू० ६२। मं० १०॥

॥ भाषार्थ ॥

(ओम् भूर्भुवः स्वः) जो अकार उकार और मकार के योग से ओम् यह अक्षर सिद्ध है, सो यह परमेश्वर के सब नामों में उत्तम नाम है जिस में सब नामों के अर्थ आ जाते हैं जैसे पिता पुत्र का प्रेम सम्बन्ध है, वैसे ही ओंकार के साथ परमात्मा का सम्बन्ध है, इस एक नाम से ईश्वर के सब नामों का बोध होता है जैसे अकार से (विराट्) जो विविध जगत् का प्रकाश करने वाला है। (अग्निः) जो ज्ञानस्वरूप और सर्वत्र प्राप्त हो रहा है। (विश्वः) जिस में सब जगत् प्रवेश कर रहा है और जो सर्वत्र प्रविष्ट है, इत्यादि नामार्थ अकार से जानना चाहिये। उकार से (हिरण्यगर्भः) जिसके गर्भ में प्रकाश करने वाले सूर्य्यादि लोक हैं, और जो प्रकाश करने हारे सूर्य्यादि लोकों का उत्पन्न करने वाला है, इससे ईश्वर को हिरण्यगर्भ कहते हैं, ज्योतिः के नाम हिरण्य, अमृत

और कीर्ति हैं। (वायुः) जो अनन्त बल वाला और सब जगत् का धारण करने हारा है, (तैजसः) जो प्रकाशस्वरूप और सब जगत् का प्रकाशक है, इत्यादि अर्थ उकारमात्र से जानना चाहिये ; तथा मकार से (ईश्वरः) जो सब जगत् का उत्पादक सर्वशक्तिमान् स्वामी और न्यायकारी है, (आदित्यः) जो नाश रहित है, (प्राज्ञः) जो ज्ञानस्वरूप और सर्वज्ञ है इत्यादि अर्थ मकार से समझ लेना, यह संक्षेप से ओंकार का अर्थ किया गया ॥

अब संक्षेप से महाव्याहृतियों का अर्थ लिखते हैं— (भूरिति वै प्राणः) जो सब जगत् के जीने का हेतु और प्राण से भी प्रिय है, इससे परमेश्वर का नाम भूः है। (भुवरित्यपानः) जो मुक्ति की इच्छा करने वालों, मुक्तों और अपने सेवक धर्मात्माओं को सब दुखों से अलग करके सर्वदा सुख में रखता है इसलिये परमेश्वर का नाम भुवः है। (स्वरिति व्यानः) जो सब जगत् में व्यापक हो के सब को नियम में रखता और सब के ठहरने का स्थान तथा सुखस्वरूप है इससे परमेश्वर का नाम स्वः है। यह [महा] व्याहृतियों का संक्षेप से अर्थ लिख दिया।

अब गायत्री मन्त्र का अर्थ लिखते हैं—(सवितुः) जो सब जगत् का उत्पन्न करने हारा और ऐश्वर्य का देने वाला

है, (देवस्य) जो सब के आत्माओं का प्रकाश करने वाला और सब सुखों का दाता है, (वरेण्यम्) जो अत्यन्त ग्रहण करने के योग्य है, (भर्गः) जो शुद्ध विज्ञानस्वरूप है, (तत्) उसको (धीमहि) हम लोग सदा प्रेमभक्ति से निश्चय करके अपने आत्मा में धारण करें, किस प्रयोजन के लिये कि (यः) पूर्वोक्त सविता देव परमेश्वर है वह (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को (प्रचोदयात्) कृपा करके सब बुरे कामों से अलग करके सदा उत्तम कामों में प्रवृत्त करे। इसलिये सब लोगों को चाहिये कि सत्चित आनन्दस्वरूप, नित्यज्ञानी, नित्यमुक्त, अजन्मा, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, व्यापक, कृपालु सब जगत् के जनक और धारण करने हारे परमेश्वर ही की सदा उपासना करें कि जिससे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष जो मनुष्य देह रूप वृक्ष के चार फल हैं, वे उस की भक्ति और कृपा से सर्वथा मनुष्यों को प्राप्त हों। यह गायत्री मन्त्र का अर्थ संक्षेप से हो चुका॥

॥ अथ समर्पणम् ॥

हे ईश्वर दयानिधे ! भवत्कृपयाऽनेन जपोपासनादिकर्मणा धर्मार्थकाममोक्षाणां सद्यः सिद्धिर्भवेन्नः। तत ईश्वरं नमस्कुर्यात्—

इस प्रकार से सब मन्त्रों के अर्थों से परमेश्वर की सम्यक् उपासना करके आगे समर्पण करे, कि "हे ईश्वर

दयानिधे ! आप की कृपा से जो जो उत्तम काम हम लोग करते हैं वे सब आपके समर्पण हैं जिससे हम लोग आपको प्राप्त होके, धर्म—जो सत्य न्याय का आचरण करना है, अर्थ—जो धर्म से पदार्थों की प्राप्ति करना है, काम—जो धर्म और अर्थ से इष्ट भोगों का सेवन करना है, और मोक्ष—जो सब दुःखों से छूट कर सदा आनन्द में रहना है । इन चार पदार्थों की सिद्धि हमको शीघ्र प्राप्त हो" ॥ इति समर्पणम् ॥

नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ॥

य० अ० १६ । मं० ४१ ॥

इसके पीछे ईश्वर को नमस्कार करे—(नमः शम्भवाय च) जो सुखस्वरूप, (मयोभवाय च) संसार के उत्तम सुखों का देने वाला (नमः शङ्कराय च) कल्याण का कर्त्ता मोक्षस्वरूप, धर्मयुक्त कामों को ही करने वाला, (मयस्कराय च) अपने भक्तों को सुख का देने वाला और धर्म कामों में युक्त करने वाला, (नमः शिवाय च शिवतराय च) अत्यन्त मङ्गलस्वरूप और धार्मिक मनुष्यों को मोक्ष सुख देने हारा है उसको हमारा बारम्बार नमस्कार हो ॥

॥ इति सन्ध्योपासनविधिः ॥

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥

यजु० अ० ३० मं०३॥

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् । स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२॥

ऋ० १० । १२१ ।१॥यजु० अ० १३।मं०४॥

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः। यस्य च्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥३॥

ऋ० १०।१२१।२॥ यजु० अ० २५। मं० १३॥

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव। य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥४॥

ऋ० १० । १२१ । ३॥ यजु० अ० २३ । मं० ३ ॥

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वः स्तभितं येन नाकः । यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै

देवाय हविषा विधेम ॥५॥ यजु० अ० ३२। मं० ६॥

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नोऽअस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥६॥

ऋ० १०। सू० १२१। १०॥

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा। यत्र देवा अमृतमानशाना-स्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥७॥ यजु० अ० ३२। मं०१०॥

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम॥८॥ यजु० अ० ४०।मं १६॥

अथाग्निहोत्र

जैसे सायं प्रातः दोनों सन्धिवेलाओं में सन्ध्योपासन करें। इसी प्रकार दोनों स्त्री पुरुष *अग्निहोत्र भी दोनों समय में नित्य किया करें।

---

* किसी विशेष कारण से स्त्री वा पुरुष अग्निहोत्र के समय दोनों साथ उपस्थित न हो सकें तो एक स्त्री वा पुरुष दोनों की ओर का कृत्य कर लेवे अर्थात् एक २ मन्त्र को दो २ बार पढ़ के दो २ आहुति करें॥ (सं० वि०)

जब यज्ञ करने को बैठें तब इन मन्त्रों से तीन आचमन करें अर्थात् एक २ से एक २ बार आचमन करें, वे मन्त्र ये हैं—

आचमनमन्त्र

ओं अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ॥१॥ इससे एक,

ओं अमृतापिधानमसि स्वाहा ॥२॥ इससे दूसरी,

ओं सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा ॥३॥

तैत्तिरीय आरण्यक प्र० १० । अनु० ३२, ३५ ॥

इससे तीसरा आचमन करके तत्पश्चात् जल लेकर नीचे लिखे मन्त्रों से अङ्गों का स्पर्श करें।

अङ्गस्पर्शमन्त्र

ओं वाङ्म आस्येऽस्तु ॥ इस मन्त्र से मुख,

ओं नसोर्मे प्राणोऽस्तु ॥ इस मन्त्र से नासिका के दोनों छिद्र,

ओं अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु ॥ इस मन्त्र से दोनों आंखें,

ओं कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु ॥ इस मन्त्र से दोनों कान,

ओं बाह्वोर्मे बलमस्तु ॥ इस मन्त्र से दोनों बाहु,

ओं ऊर्वोर्मऽओजोऽस्तु ॥ इस मन्त्र से दोनों जङ्घा और

ओं अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु ॥

पारस्कर गृ० का० १ । कण्डिका ३ । सू० २५ ॥

इस मन्त्र से दाहिने हाथ से जल स्पर्श करके मार्जन करना ॥

तत्पश्चात् समिधाचयन वेदि में करें पुनः—

॥ अग्न्याधानमन्त्र ॥

ओं भूर्भुवः स्वः ॥ गोभिल गृ० प्र० १ । खं १ । सू० ११ ॥

इसका उच्चारण करके ब्राह्मण, क्षत्रिय वा वैश्य के घर से अग्नि ला अथवा घृत का दीपक जला, उससे कपूर* में लगा, किसी एक पात्र में धर उसमें छोटी २ लकड़ी लगा के यजमान या पुरोहित उस पात्र को दोनों हाथों से उठा, यदि गरम हो तो चिमटे से पकड़ कर अगले मन्त्र से आधान करे। वह मन्त्र यह है—

ओं भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा। तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे ॥१॥

यजु० अ० ३ । मं० ५ ॥

इस मन्त्र से वेदी के बीच में अग्नि को धर उस पर छोटे छोटे काष्ठ और थोड़ा कपूर धर अगला मन्त्र पढ़ के व्यजन(पंखे)से अग्नि को प्रदीप्त करे।

अग्निप्रदीप्त करने का मन्त्र

ओं उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्त्ते सꣳसृजेथामयं च। अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ॥

यजु० अ० १५ । मं० ५४ ॥

*शुद्ध देशी कपूर होना चाहिए ॥ (सं०)

जब अग्नि समिधाओं में प्रविष्ट होने लगे तब चन्दन अथवा पलाशादि की तीन लकड़ी आठ २ अङ्गुल की घृत में डुबो उनमें से नीचे लिखे एक २ मन्त्र से एक २ समिधा को अग्नि में चढ़ावें वे मन्त्र ये हैं—

समिदाधानमन्त्र

ओं अयं त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्ध वर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा॥ इदमग्नये जातवेदसे इदं न मम ॥१॥

इससे पहिली,

ओं समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्। आस्मिन् हव्या जुहोतन स्वाहा॥ इदमग्नये इदं न मम ॥२॥ यजु० अ० ३। मं० १॥

इससे और—

ओं सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन। अग्नये जातवेदसे स्वाहा॥ इदमग्नये जातवेदसे इदं न मम ॥३॥ यजु० अ० ३ मं० २॥

इस मन्त्र से अर्थात् दोनों मन्त्रों से दूसरी

ओं तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्धयामसि। बृहच्छोचा यविष्ठ्य स्वाहा॥ इदमग्नयेऽङ्गिरसे इदं न मम ॥४॥ यजु० अ० ३। मं० ३॥

इस मन्त्र से तीसरी समिधा की आहुति देवे।

इन मन्त्रों से समिदाधान करके नीचे लिखे मन्त्र से पांच घृत की आहुति देनी॥

घृताहुतिमन्त्र

ओं अयं त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्ध वर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा॥ इदमग्नये जातवेदसे इदं न मम॥१॥

तत्पश्चात् अञ्जलि में जल लेके वेदी के पूर्व दिशा आदि चारों ओर छिड़कावे इसके ये मन्त्र हैं—

जलप्रसेचनमन्त्र

ओम् अदितेऽनुमन्यस्व॥ इस मन्त्र से पूर्व,

ओम् अनुमतेऽनुमन्यस्व॥ इससे पश्चिम,

ओं सरस्वत्यनुमन्यस्व॥ इससे उत्तर और

गोभिल गृ० प्र० १। खं० ३। सू० १-३॥

ओं देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय। दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु॥ यजु० अ० ३०। मं० १॥

इस मन्त्र से वेदी के चारों ओर जल छिड़कावें।

आघाराज्याहुतिमन्त्र

ओम् अग्नये स्वाहा॥ इदमग्नये इदं न मम॥

इस मन्त्र से वेदि के उत्तर भाग अग्नि में।

ओं सोमाय स्वाहा॥ इदं सोमाय इदं न मम॥

गो० गृ० प्र० १। खं० ८। सू० २४॥

इस मन्त्र से वेदी के दक्षिण भाग में प्रज्वलित समिधा पर आहुति देनी, तत्पश्चात्—

आज्यभागाहुतिमन्त्र

ओं प्रजापतये स्वाहा॥ इदं प्रजापतये इदं न मम॥

ओम् इन्द्राय स्वाहा॥ इदमिन्द्राय इदं न मम॥

इन दो मन्त्रों से वेदी के मध्य में दो आहुति देनी।

प्रातःकाल आहुति के मन्त्र

ओं सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा॥१॥

ओं सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा॥२॥

ओं ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा॥३॥

ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या जुषाणः सूर्यो वेतु स्वाहा॥४॥

सायंकाल आहुति के मन्त्र

अब नीचे लिखे हुए मन्त्र सायंकाल में अग्निहोत्र के जानो।

ओं अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा॥१॥

ओं अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ॥२॥

ओं अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ॥३॥

इस तीसरे मन्त्र को मन से उच्चारण करके तीसरी आहुति देनी ॥

ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजू रात्र्येन्द्रवत्या जुषाणो अग्निर्वेतु स्वाहा ॥४॥ य० अ० ३। मं० ६, १० ॥

दोनों काल के मन्त्र

अब निम्नलिखित मन्त्रों से प्रातः सायं आहुति देनी चाहिये—

ओं भूरग्नये प्राणाय स्वाहा ॥ इदमग्नये प्राणाय इदं न मम ॥ १ ॥

ओं भुवर्वायवेऽपानाय स्वाहा ॥ इदं वायवेऽपानाय इदं न मम ॥ २ ॥

ओं स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा ॥ इदमादित्याय व्यानाय इदं न मम ॥ ३ ॥

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा ॥ इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्य इदं न मम ॥ ४ ॥

ओं आपो ज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरों स्वाहा ॥५॥

ओं यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते ।
तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥६॥

यजु० अ० ३२ । मं० १४ ॥

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव ।
यद्भद्रं तं न आ सुव स्वाहा ॥ ७ ॥

य० अ० ३० । मं० ३ ॥

ओं अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ॥ युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम स्वाहा ॥ ८ ॥

य० अ० ४० । मं० १६ ॥

इन आठ मन्त्रों से एक २ मन्त्र करके एक २ आहुति ऐसे आठ आहुति देवें—

ओं सर्वं वै पूर्णं ँ स्वाहा ॥

इस मन्त्र से तीन [पूर्णाहुति] अर्थात् [एक २] बार पढ़के एक २ करके तीन आहुति देवे ॥

॥ इत्यग्निहोत्रविधिः संक्षेपतः समाप्तः ॥

भजन

जय जय पिता परम आनन्द दाता।
जगदादि कारण मुक्ति प्रदाता ॥१॥
अनन्त और अनादि विशेषण हैं तेरे।
सृष्टि का स्रष्टा तू धर्त्ता संहर्त्ता ॥२॥
सूक्ष्म से सूक्ष्म तू है स्थूल इतना।
कि जिसमें यह ब्रह्माण्ड सारा समाता ॥३॥
मैं लालित व पालित हूं पितृस्नेह का।
यह प्राकृत सम्बन्ध है तुझ से ताता ॥४॥
करो शुद्ध निर्मल मेरे आत्मा को।
करूं मैं विनय नित्य सायं व प्रातः ॥५॥
मिटाओ मेरे भय आवागमन के।
फिरूं न जन्म पाता और बिलबिलाता ॥६॥
बिना तेरे है कौन दीनन का बन्धु।
कि जिसको मैं अपनी अवस्था सुनाता ॥७॥
"अमी" रस पिलाओ कृपा करके मुझको।
रहूं सर्वदा तेरी कीर्ति को गाता ॥८॥

आरती

जय जगदीश हरे प्रभु जय जगदीश हरे ।
भक्त जनन के संकट क्षण में दूर करे ॥१॥
जो ध्यावे फल पावे, दुख विनशे मन का ।
सुख सम्पत्ति घर आवे, कष्ट मिटे तन का ॥२॥
मात पिता तुम मेरे शरण गहूं किसकी ।
तुम बिन और न दूजा आस करूं जिसकी ॥३॥
तुम पूरण परमात्मा तुम अन्तर्यामी ।
पारब्रह्म परमेश्वर तुम सब के स्वामी ॥४॥
तुम करुणा के सागर तुम पालनकर्ता ।
मैं सेवक तुम स्वामी कृपा करो भर्ता ॥५॥
तुम हो एक अगोचर सब के प्राणपति ।
किस विध मिलूं दयामय तुमको मैं कुमति ॥६॥
दीन बन्धु दुःख हर्ता तुम रक्षक मेरे ।
करुणा हस्त उठाओ द्वार पड़ा तेरे ॥७॥
विषय विकार मिटाओ पाप हरो देवा ।
श्रद्धा भक्ति बढ़ाओ सन्तन की सेवा ॥८॥